... AGARCHAND ... SETHIA
JAIN ... RARY
BIKANER RAJPUTANA.

भूमिका

[illegible]

[illegible]

[illegible]

(मेवाड़) में रचा था। आप के बनाये बहुत से व्याख्यान, कथा और पद्यबन्ध जोड़ आदि हैं। काव्य के हिसाब से यदि देखा जाय तो वास्तव में यह अपूर्व है। जिन सज्जनों ने आपके बनाये मारवाड़ी भाषा के गूढ़ ग्रंथों को पढ़ा होगा, वही उनका महत्व रसास्वादन कर सके होंगे।

खेद है कि मारवाड़ी बोली में लिखे हुए जैन आचार्यों की रचनाओं पर हिन्दी भाषा भाषियों की दृष्टि अभी तक नहीं पड़ी है। Comparative Study (तुलनात्मक पठन) के लिये हिन्दी विद्वानों को चाहिए कि तेरह पंथी आचार्य एवम् साधुओं के बनाये हुए ग्रंथों को देखें। खास कर श्रीमद् भिक्षु स्वामी एवम् श्रीमज्जयाचार्य इन के ग्रंथ तो भाव गम्भीरता में, शब्द गुम्फन चातुर्य में, एवं काव्य के हिसाब से प्रत्येक हिन्दी तथा अन्य भाषा के विद्वानों के देखने और विवेचन भाव से पठन करने योग्य हैं।

सुदर्शन सेठ के चरित्र में प्रसंगवश अनुवादक ने यहीं साथ साथ में जैन धर्म के मूल तत्वों का दिग्दर्शन कराया है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, एवम् परिग्रहपरिमाण का भी उचित स्थान से सहित प्रयोग किया है; किन्तु अनुवादक के अनुवाद व गुण वर्णन करने से तो लेखक के पाण्डित्य के संबंध में परिचय मिलता है। आशा है कि हिंदी भाषा के विद्वान इस ग्रंथ का समुचित आदर कर लेखक महाशय का उत्साह बढ़ायेंगे, ताकि वे भविष्यत् में तेरह पंथी आचार्यों के ग्रंथों का अनुवाद कर अन्य कई पुस्तकें भी उपहार दे सकें। लेखक तथा प्रकाशक का

AGARCHAND BHAIRODAN SETHIA
JAIN LIBRARY.
BIKANER RAJPUTANA.

अनुवादक का निवेदन।

"यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निघर्षणच्छेदनतापताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते, श्रुतेन शीलेन कुलेन कर्मणा" ॥

जैसे सोने की परीक्षा उसे पत्थरों पर घिसकर, काट कर, कसौटी से कूट कर और आग में तपाकर की जाती है। वैसे ही पुरुष की परीक्षा होने की शास्त्र, आचरण, कुल और कर्म से की जाती है, ठीक इसी प्रकार सेठ सुदर्शन-स्वर्ण की भी परीक्षा की गयी। पहले वे कपिला की बातों में फंसे नहीं, फिर अभया के साथ होकर उन्हीं रानी-अभया से झगड़ा, इसके बाद उन्होंने (मौन लिए ध्यानस्थ हो कर) विपत्ति-कसौटी के सब कष्ट को सहते और मन से शुभ ही (उन्होंने के उनके पुण्य प्रताप शूली से सिंहासन हुआ) किन्तु वहां सत्य को आंच उनकी जरा सा भी नहीं। वे अपने धर्म पर दृढ़ रहे विचलित न हुए। संसार में ऐसे व्यक्ति कम होते हैं जो इतना दुःखों के होते दिखाई पर भी [illegible] की [illegible] के [illegible] चरित्र धर्म [illegible] मार्ग को पार कर जाते हैं और वे पार कर जाते हैं वही महात्मा और महापुरुष के नाम से पुकारे जाते हैं। ऐसे महापुरुषों में सेठ सुदर्शन का नाम सबसे ऊंचे स्थान में उल्लेखनीय है।

लिए मैं बाबू रायचन्द जी सुराना का कृतज्ञ हूं, जिन्होंने मुझे भाव-भाषा की उलझने सुलझाने में बड़ी सहायता दी है। भूमिका के लेखक बाबू छोगमल जी चोरड़ा, बी० ए० बी० एल० ने नोट लिखने में बड़ी मदद दी है अतः उनका कृतज्ञ हूं। चरित्र-मुद्रिका की शोभा बढ़ाने की इच्छा से, उपयुक्त स्थानों में, कई एक मासिकपत्रों तथा पुस्तकों से संग्रहीत, पद्यों का नगीना जड़ा गया है, अतः उनके रचयिताओं के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना अपना कर्तव्य समझता हूं। साथही बाबू महालचन्द जी बयेद का भी मैं आभारी हूं जिन्होंने मुझे ऐसी उपयोगी पुस्तक के लिखने का परामर्श दिया और उसे प्रकाशित किया।

प्रूफ संशोधन में कई एक अशुद्धियां रह गयी हैं पाठक उनके लिए क्षमा करेंगे।

ठाँव—उन्नाव (युक्तप्रान्त)
शिवरात्रि—फाल्गुन, सं० १९८०

विनीत—
श्याम सुन्दर अवस्थी

रत्न भरे पड़े हैं जिनका मुकाबला करने में अबतक किसी भी देश का साहित्य समर्थ नहीं हुआ। इन्हीं रत्नों में 'सुदर्शन चरित्र' भी एक है, जिसका हिन्दी अनुवाद कराकर प्रकाशित करने की मेरी बहुत दिनों से उत्कट इच्छा थी, क्योंकि ब्रह्मचर्य के महत्त्व को प्रदर्शित करने में यह ग्रन्थ अद्वितीय है और आवश्यकता भी इस समय ऐसे ही ग्रन्थों की है, जो ब्रह्मचर्य के महत्त्व को भली-भांति बतला कर नवयुवकों के चरित्र-सुधार में सहायक हों। अतएव जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय के आचार्यश्री [illegible] रचित 'सेठ सुदर्शन को व्याख्यान' नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करने के लिये मैंने पण्डित रत्नचन्द्रजी शास्त्री से अनुरोध किया। यही हर्ष की बात है कि आपने उसे सहर्ष स्वीकार कर, शीघ्र पूरा कर दिया, एतदर्थ आपको धन्यवाद।

पुस्तकके अनुवादके सम्बन्धमें मैं और तो कुछ कह नहीं सकता क्योंकि मैं कोई भाषाका विद्वान, लेखक या समालोचक नहीं; परंतु इतना कह सकता हूं कि मेरे देखनेमें इसे सर्वांग-सुन्दर बनानेमें पण्डितजी ने कुछ कसर उठा नहीं रक्खी, फिर भी यह पुस्तक बहुत जल्दी में लिखी गयी है इसलिये त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक ही है। आशा है विज्ञजन क्षमा करेंगे।

इस पुस्तक की छपाई सफाई और प्रूफ-संशोधन विशेष ध्यानसे मैंने स्वयं देखकर और सुधारकर किया है। यदि पाठकगण इसे पढ़कर और चरित्र पालनेका लाभ उठायेंगे तो मैं अपने को सफल समझूंगा और शीघ्र ही कोई दूसरी पुस्तक लेकर सेवामें उपस्थित होऊंगा।

निवेदक

महाचन्द बयेद।

विषय-सूची

(पहला अध्याय)

विषय—	पृष्ठ
१—देश और काल	१
२—सुदर्शन को सेठ की पदवी ...	५
३—दाम्पत्य प्रेम	६
४—कर्मों का भोग ...	७

(दूसरा अध्याय)

५—सेठ पर मोहित होना ..	९
६—सेठ को धोखा देकर लाना	११
७—कपिला को देख कर सेठ का घबड़ाना ...	१४
८—स्त्री-गमन का त्याग ...	१६
९—सुदर्शन की चाल ..	१६
१०—कपिला का पश्चाताप ..	१७
११—दूसरे के घर जाने का त्याग ..	१८
१२—त्रिया-चरित्र और कुशीला वर्णन	१९

३५—संचित कर्मों का चिन्तवन ७४
३६—शील-सहायक देवताओं का आगमन ७६
३७—शूली का सिंहासन ७८
३८—राज सेना का धावा ७९
३९—देवता और राजसेना का संग्राम ८०
४०—राजा सेठ की शरण आवे ८१
४१—देवता की फटकार ८२
४२—राजा का क्रोध निवारण ८४
४३—राजा द्वारा सेठ का महोत्सव ८५
४४—सेठ का अपने घर आना ८७
४५—अभया रानी का आत्मघात ८९

(छठवां अध्याय)

४६—सेठने संयम लेने की ठानी ९५
४७—साधु दर्शन ९६
४८—सुदर्शन का पूर्व भव ९९
४९—नवकार की महिमा १०१
५०—सेठने मनोरमा से आज्ञा मांगी १०२

(सातवां अध्याय)

५१—दीक्षा की तय्यारी १०६
५२—सेठ का दीक्षित होना १०७
५३—मनोरमा की विनय १०९
५४—विहार और तप १०९
५५—साधु सुदर्शन का एकान्त वास ११०
५६—वेश्या आविका बनी १११
५७—वेश्या द्वारा उपसर्ग ११३

३५—संचित कर्मों का विस्तरन ७५

३६—शील-सहायक देवताओं का आगमन ७६

३७—शूली का सिंहासन ७८

३८—राज सेना का धावा ७६

३९—देवता और राजसेना का संग्राम ८०

४०—राजा सेठ की शरण आये ८१

४१—देवता की फटकार ८२

४२—राजा का क्रोध निवारण ८४

४३—राजा द्वारा सेठ का महोत्सव ८५

४४—सेठ का अपने घर आना ८७

४५—अभया रानी का आत्मघात ८६

(छठवां अध्याय)

४६—सेठने संयम लेने की ठानी ६५

४७—साधु दर्शन ६६

४८—सुदर्शन का पूर्व भव ६६

४९—नवकार की महिमा १०१

५०—सेठने मनोरमा से आज्ञा मांगी १०२

(सातवां अध्याय)

५१—दीक्षा की तय्यारी १०६

५२—सेठ का दीक्षित होना १०७

५३—मनोरमा की विनय १०६

५४—विहार और तप १०६

५५—साधु सुदर्शन का एकान्त वास ११०

५६—वेश्या श्राविका बनी १११

५७—वेश्या द्वारा उपसर्ग ११२

(तीसरा अध्याय)

१३—वाटिका विहार ३५
१४—वाटिका में सुदर्शन सेठ ३८
१५—कपिला और अभया की बातचीत ३९
१६—अभया की सेठ मिलन-लालसा ४१
१७—पंडिता धाय की दुश्चिन्ता ४४
१८—विनाशकाले विपरीत बुद्धिः ४६
१९—धाय का प्रण करना ४७
२०—द्वारपालों को धोखा ४९

(चौथा अध्याय)

२१—श्मशान से सेठ को उठा लाना ५१
२२—अभया-सुदर्शन मिलन ५४
२३—सुदर्शन की दृढ़ता ५७
२४—अभया रानी की प्रतिज्ञा ५९
२५—सेठ का शुभ चिन्तवन ६१
२६—अभया की अन्तिम चेष्टा ६४
२७—अभया का पश्चात्ताप ६६
२८—सेठ पर झूठा दोषारोपण ६६
२९—राजा की दण्डाज्ञा ६७
३०—प्रजा की पुकार ६८
३१—राजा ने किसी की न सुनी ७२
३२—सेठ को शूली देने के लिये ले जाना ७४
३३—मनोरमा का विलाप और प्रण

(पांचवां अध्याय)

३४—अभया रानी का प्रसन्न होना ७६

३५—संचित कर्मों का चिन्तवन ७४
३६—शील-सहायक देवताओं का आगमन ७६
३७—शूली का सिंहासन ७८
३८—राज सेना का धावा ७९
३९—देवता और राजसेना का संग्राम ८०
४०—राजा सेठ की शरण आये ८१
४१—देवता की फटकार ८२
४२—राजा का क्रोध निवारण ८४
४३—राजा द्वारा सेठ का महोत्सव ८५
४४—सेठ का अपने घर आना ८७
४५—अभया रानी का आत्मघात ८९

(छठवां अध्याय)

४६—सेठने संयम लेने की ठानी ९५
४७—साधु दर्शन ९६
४८—सुदर्शन का दृढ़ मन ९९
४९—नवकार की महिमा १०१
५०—सेठने मनोरमा से आज्ञा मांगी १०२

(सातवां अध्याय)

५१—दीक्षा की तय्यारी १०६
५२—सेठ का दीक्षित होना १०७
५३—मनोरमा की विनय १०८
५४—विहार और तप १०९
५५—साधु सुदर्शन का एकान्त वास ११०
५६—वेश्या श्राविका बनी १११
५७—वेश्या द्वारा उपसर्ग ११३

३५—सचित्त कर्मों का चिन्तवन ७५
३६—शील-सहायक देवताओं का आगमन ७६
३७—शूली का सिंहासन ७८
३८—राज सेना का धावा ७९
३९—देवता और राजसेना का संग्राम ८०
४०—राजा सेठ की शरण आये ८१
४१—देवता की फटकार ८२
४२—राजा का क्रोध निवारण ८४
४३—राजा द्वारा सेठ का महोत्सव ८५
४४—सेठ का अपने घर आना ८७
४५—अभया रानी का आत्मघात ८९

(छठवां अध्याय)

४६—सेठने संयम लेने की ठानी ९५
४७—साधु दर्शन ९६
४८—दर्शन का शुभ फल ९९
४९—नवकार की महिमा १०१
५०—सेठने मनोरमा से आज्ञा मांगी . . . १०३

(सातवां अध्याय)

५१—दीक्षा की तय्यारी १०६
५२—सेठ का दीक्षित होना १०७
५३—मनोरमा की विनय १०८
५४—विहार और तप १०९
५५—साधु सुदर्शन का एकान्त वास ११०
५६—वेश्या आविका बनी १११
५७—वेश्या द्वारा सत्कर्म ११३

अगरचंद भैरोंदान सेठिया
जैन ग्रन्थालय.
बीकानेर, (राजपूताना.)

पहला अध्याय

जन्म और बाल्यकाल ।

देश और काल ।

प्राचीन कालमें, किसी समय भरतक्षेत्र के अङ्गदेश में, इन्द्रपुरी सरीखा चम्पा नामक एक नगर था। वहां पर उच्च जाति का, निर्मल कुलवाला, राजशिरोमणि, धात्रीवाहन नाम का राजा राज्य करता था। अप्सराओं को मात करनेवाली, सौन्दर्य्य में सुराङ्गनाओं से बढ़ कर, अभया नाम की उसकी पटरानी थी। उस नगर के निवासी धर्म-कर्म में बड़े प्रवीण तथा जिन धर्म के तत्त्वों के अच्छे ज्ञाता थे, गुरुसाधुओं का आवागमन अधिक होने के

पुत्रों की प्राप्ति, जिनमें से एक दिन रात्रि के समय पर्यंक पर सोते हुए, स्वप्न में, गुणवंत सन्तोष देखा। उसने स्वप्न का संवाद अपने पति से कहा। उन्होंने प्रातःकाल होते ही स्वप्न-पाठक (ज्योतिषी पंडितों) को बुला कर स्वप्न का शुभाशुभ फल पूछा। विचारक ने कहा कि तुम्हारे एक गुण-सम्पन्न, [illegible], एक [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

थोड़े दिन पश्चात् कपिल पुरोहित से उसकी मित्रता हुई। दोनों में खूब बनती थी, एक दूसरे के बड़े विश्वासपात्र थे। जब सुदर्शन विवाह के योग्य हुए तब ऋषभदास ने सागरदत्त की सुपुत्री मनोरमा के साथ, अच्छे लग्न और शुभ मुहूर्त में, बड़े गाजे बाजे के साथ, रीति अनुसार धन खर्चते हुए, विवाह कार्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् निमन्त्रित कुटुम्ब परिवार वालों को भोजन कराया और सब सज्जनों को भली भांति सन्तुष्ट किया। इधर सुदर्शन की स्त्री मनोरमा बड़ी रूपवती, गुणवान थी वैसे ही धर्म कार्य में प्रवीण तथा सुपात्र दान देने में अत्यन्त चतुर थी। उधर इसके मित्र कपिल पुरोहित की कपिला नामक स्त्री बड़ी दुराचारिणी, दुःशील और कुलटा थी।

सुदर्शन को सेठ की पदवी।

एक समय सेठ ऋषभदास ने [illegible]

[illegible] कुछ दिन पश्चात् सेठ

कर्मों का भोग।

इसी संसार में कोई निर्धन है तो कोई [illegible]

दूसरा अध्याय

कपिला का कष्ट और सेठ की चाल।

सेठ का मोहित होना।

[illegible]

[illegible] नहीं। यदि [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] की [illegible] [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] है, "[illegible]" [illegible] है, [illegible] [illegible] है कि [illegible] प्रकार [illegible] है [illegible] प्रकार [illegible] है। [illegible] कि किस प्रकार [illegible] [illegible] है।

[illegible] को [illegible] [illegible]।

[illegible] कि [illegible] और [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] कि [illegible] है [illegible] है [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] और [illegible] कि [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] है, [illegible] है [illegible] कि [illegible]

चोर के पकड़ा ले चले। सेठ ने मन में सोचा कि निज-चारित्र के
रक्षित होने के कारण ही मैं इस आपदा में आ फँसा हूं। खैर!
कुछ भी हो विपत्ति के समय मनुष्य को धैर्य पूर्वक कार्य करना
चाहिये "आपदि कार्य स्थिरीकृत्य धार्य, धीरत्व, धर्म, नित्य सहायतो"
वस्तु! यहां घबराने से काम न चलेगा। यदि मेरी आत्मा मेरे
वश में है, मैं इन्द्रिय लोलुप नहीं हूं, मेरे मानसिक विचार शुद्ध
हैं, तो अनेकानेक उपाय करने पर भी यह मुझे न डिगा सकेगी।
जो मनुष्य सत्पुरुष ब्रह्मचर्य व्रत पालन में दृढ़ संकल्प हैं, उन्हें
जितनी ही परीक्षा करेंगी उतनी उतनी ही अधिक तपने सोने
की भांति शील धर्म के अनुराग की प्रभा चढ़ेगी। यह अपने
अधम वैरी के पीछे पड़ने पर ही मनुष्य घेर घेर कर मारने
पड़ा हो जाता है, उसका कोई भी अहित नहीं कर सकता।
नारी की प्राप्ति पड़े न, किन्तु सबों के सुख का मूर्ख दास होता
है। वे स्वतः दुराचारी और अजितेन्द्रिय पुरुष सुख साधन
की लालसा से छिपे हैं कहीं चूर हो जाते हैं, उन्हें दुष्कर्म दुःख
मिलता है सुख कुछ भी नहीं, क्योंकि यह विषय-भोग आदि
अन्यान्य सांसारिक जितने कार्य हैं सब सब तुच्छ हैं। अतएव
इनके आधीन होना उनके परिणाम में सदा-दुःखितों का
काम नहीं। सांसारिक जितने विषय हैं वे लोगों के विनाश
रूप होने पर भी विनाश रूप हैं। यद्यपि कामिनी और
कंचन लोगों को प्रीति जनक मालूम होते हैं तथापि अन्त में ये हैं वे
सभी दुःख जनक।

काम वासना वर्जित हैं. अतः ऐसे काम नहीं करने चाहिये। सेठ ने कहा, हे! कपिला तू निपट निर्लज्ज और कामान्ध हो रही है. क्योंकि इतनी देर बाद भी तू यह न जान सकी कि मैं पुरुषत्व हीन हूं। यदि मुझ में कुछ भी पुरुषत्व काम ओज—होता तो तुम जैसी अप्सरा स्त्रियों से प्रेम करने में मैं क्यों संकोच करता! तू ने केवल नैन चलाये हो से नहीं, प्रत्येक के पुरुषों से सार कर भी मेरी काम परीक्षा कर ली है. इतने पर भी यदि मेरे क्लीवत्व का ज्ञान न हुआ तो अवश्य ही तू मूर्ख है। क्या तू नहीं जानती कि बड़े २ इन्द्रादिक देव भी स्त्रों के कामदेव को स्वीकार कर चुके हैं। जिन में कुछ भी पुरुष भाव होता है, वे तो स्त्री के गुलाम बन जाते हैं. मैं तो उस सेंहुड़ के (टेसू के) फूल के सदृश हूं. जो गन्ध-रहित निष्फल होता है। मैंने तेरी सभी बातें ध्यान पूर्वक सुनी हैं, किन्तु एक पुरुष भाव के अभाव से निरुत्तर होकर मलिन मन हो रहा हूं। बन्धु! अब मुझे मेरे गृह जाने दे, मैं तेरी आशा की पूर्ति करने में असमर्थ हूं।

कपिला का पश्चात्ताप।

कपिला सुदर्शन सेठ की यह बातें सुन कर दुखित हो लम्बी सांसें भरने लगी। उसकी आशा-लता पर तुषार की वृष्टि हो गयी। अब वह हाथ मल २ कर पछताती और सिर धुनती है कि 'हाय! मेरी तो दोनों गयीं—इच्छा की पूर्ति तो न हुई किन्तु लज्जा रहित हो गयी—मेरी निर्लज्जता सेठ पर प्रकट हो गयी, आज

उत्तरोत्तर दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता है। सेठ भी इस आपदा से निर्विघ्न निरापद हो गये; अस्तु! शील-व्रत पर उनका प्रगाढ़ प्रेम और भी प्रौढ़ हो गया।

त्रिया-चरित्र और कुशीला वर्णन।

कपिला बड़ी ही दुष्टा है। इसके दुश्चरित्रों, कपट की चालों तथा बीभत्स पूर्ण कौतुकों को देख कर इस बात में सन्देह नहीं रह जाता कि कुशीला इस प्रकार के निन्दनीय कार्य्य करने में समर्थ हो सकती है। प्रसङ्ग वश यहां कुछ ऐसी स्त्रियों का उल्लेख किया जाता है जिन्होंने अपने कर्तव्यों से यह सिद्ध कर दिया है कि सर्पिणी के दांत में, चींटी के मुंह में, और बिच्छू के केवल पूंछ में ही विष होता है; किन्तु कुशीला स्त्री के सारे शरीर में विष ही विष भरा है। स्त्रियों के अवगुणों की कथा अवर्णनीय है, इस बात को श्री जिनेश्वर भगवान ने भी स्वीकार किया है। इनके अवगुणों का वारा-पार नहीं, मगर यहां लोगों की जानकारी के लिये संक्षिप्त में कुछ आख्यायिकायें उल्लेख की जाती हैं। स्त्री कपट की पोटली, झूट का घर, कलहकारिणी और राग-द्वेष की जड़ है। भाई २ को लड़ा देना, पिता पुत्र को अलग कर देना, प्रेम-विच्छेद कराना—फूट पैदा कराना—तो इसके बांये हाथ का खेल है। कहा है कि:—

अन्य संग बिलसत वचन है अन्य ओर लोचन संपात।
जिसकी हृदय चिन्तना औरहि ऐसी रमणी दुख उत्पात॥

निर्बल कर नरक-निगोद * में डाल दिया है। अन्तभाग में तो वह मोरनी से बढ़ चढ़ कर है। मोरनी मीठी बोली बोल कर सर्प को खाती है, तो यह रसीली बोली बोल कर कुशील मनुष्यों का प्राण हर लेती है। जैसे मनुष्य कटीली झाड़ी में उलझ जाता है वैसे ही इन्द्रिय लोलुप पुरुष स्त्री के हाव-भाव में फंस जाता

---

* निगोद—अनन्तकायिक—एक निगोद में अनन्त जीव रहते हैं। निगोद के जीव एकेन्द्रिय होते हैं। जैन शास्त्रानुसार एकेन्द्रियों का पाँच भेद है। पृथ्वी, अप्, अग्नि (तेज) वायु, एवं वनस्पति। निगोद इस जीव पर्याय वनस्पति में ही होता है। जिस वनस्पति में एक शरीर में एक ही जीव है उसे प्रत्येक वनस्पति कहा जाता है। जिस वनस्पति के एक शरीर में अनन्त जीव हैं उसे साधारण वनस्पति कहते हैं। निगोद का जीव साधारण वनस्पति में है। अष्ट कर्म में नाम कर्म की एक प्रकृति को साधारण नाम कर्म प्रकृति कहते हैं, इसी कर्म प्रकृति के उदय से जीव निगोद शरीर पाता है। नारकी जीवों की अपेक्षा निश्चय न्याय से निगोद जीव को जन्म मरणादिक एवं एक शरीर में अनन्त जीवों का अवस्थानादि रूप अत्यन्त दुःख जनक होता है, परन्तु मत्त या मूर्छित अवस्था में जैसे शरीर में आघातादि जनित पीड़ा की अनुभूति नहीं होती वैसे ही निगोद जीव को विशेष दुःख होते हुए भी अति दुःसह नहीं होता। अनादि कर्म सम्बन्ध से यह सब निगोद में रहते हैं। साधारण शरीर में कितने निगोद जीव हैं इसका अनुमान इतने ही से हो सकता है कि इन जीवों में से जीव निकलते जाते हैं तब भी भूत, भविष्यत्, वर्तमानकाल में कभी भी एक शरीर न खाली हुआ, और न होगा।

निगोद के भी दो भेद हैं। सूक्ष्म एवं बादर। सूक्ष्म निगोद तो समस्त लोक में भरे हुए हैं और बादर निगोद स्कन्ध मूलादि में ही हैं।

है। नारीके नैन तीखे बाणों और बचन भाले से भी बढ़ कर हैं, किन्तु जब यह तिरछी दृष्टि से देखती है तो वही नैन तलवार का भी काम करते हैं। अन्यान्य शस्त्रों का मारा हुआ मनुष्य तुरन्त ही प्राण त्याग देता है; किन्तु इन शस्त्रों का घायल, मतवाला हो, ज्ञान शून्य होकर, छटपटा २ कर मरता है।

जोंक जिस स्थान पर लग जाती है वहां का रक्त पी लेती है, पर स्त्री जिस पुरुष से लगती है, उसका खून चूस, प्राण हीन बना देती है। सच बात तो यह है कि इस ठगिनी से—जो हाथ में जादू का काम करने वाली मेंहदी लगा, नागिन से भयङ्कर सिर के बालों को बांध, तंग चोली से कुच-कमर को कस कर, संसार को ठगने के हेतु निकलती है—वही सत्पुरुष रक्षित रह सकता है जिसने सद्गुरु के अमृत मय सदोपदेशों का पान किया हो। नारी नवग्रह से बढ़कर है। अरिष्ट ग्रह होने से कष्ट तथा प्राण नाश की शंका रहती है, परन्तु नारी जिस पर मुग्ध हो जाती है नरक निगोद में पहुंचा देती है। बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि इस असार संसार की अनित्यता तथा मोहजाल को जानते हुए भी लोग "फूले २ फिरत हैं होत हमारो ब्याह" हंसी खुशी के साथ काठ में पैर डालते और नारी रूपी बेड़ी पहन कर भी आनन्द के गीत गाते हैं। देखिये! उज्जैन नगरी का हरचन्द नामक राजा सोमला के ऊपर मोहित हुआ और उसने उस को मार कर नदी में बहा दिया। यशोदा ने अपने पति को विष देकर मार डाला, उसके मृत-शरीर

[illegible]

थे. संग साथ की चिन्ता में दुःखी और व्यस्त रहते। [illegible] चक्रवर्ती की • चूलनी माता ने [illegible] के कारण अपने पुत्र को

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त की माता का नाम चूलनी था। जब ब्रह्मदत्त के पिता का स्वर्गवास हो गया तो इनकी माता चूलनी ने पुराने प्रधान का पद हस्तान्तरित कर के उसके स्थान पर दीर्घ को प्रधान का पद सौंपा और उसके साथ भोग-विलास करने लगी। ब्रह्मदत्त के यहाँ एक काग और हंसनी पली हुई थी। एक दिन काग ने आकर हंसनी की चोंच [illegible] कर सताने लगा। यह देख ब्रह्मदत्त क्रुद्ध हुआ और कहने लगा कि अरे नीच काग तेरे मुँह को धिक्कार है! [illegible] मुँह को [illegible]। ब्रह्मदत्त के यहाँ ऐसा अन्याय न होगा, भविष्य में यदि फिर कभी यदि तेरी ऐसी चेष्टा देखी तो तू जान से मारा जायगा। यह बात, प्रधान और रानी ने जब उन दोनों ने सुनी तो चौंक उठे और सोचने लगे कि हो न हो यह बात हम दोनों ही पर लक्ष्य रख कर कही गई है। यहाँ पर "चोर की दाढ़ी में तिनका" की कहावत चरितार्थ हुई और प्रधान ने रानी से कहा कि अभी तो यह बालक है तब ऐसी बातें कहता है जब सयाने होंगे तब हम दोनों के हास-विलास में बाधा पहुंचावेंगे, अतः इन्हें किसी प्रकार मार डालना चाहिये। रानी भी इससे सहमत हो गई और पुत्र के बध की इच्छा से लाख का एक महल तैयार कराया, किन्तु यह भेद खुलते हुए पुराने प्रधान को मालूम हो गया उसने ब्रह्मदत्त से कहा कि तुम्हारी माता तुम्हें मार डालना चाहती है, इसी उद्देश्य से यह लाख का महल निर्माण किया गया है। ब्रह्मदत्त ने प्रधान की इस बात का विश्वास न किया और कहने लगा कि मेरी माँ मुझे मार डालेगी, यह कभी नहीं हो सकता, माता की पुत्र पर के [illegible] होता है, माता से पुत्रवध का अनर्थ कदापि न होगा। प्रधान ने कहा अच्छा, यदि आप मेरी बात का

हार-हाथी के कारण कोणिक और वहल कुमार से घोर संग्राम.

राज्याधिकारी हैं और ऐसी अमूल्य वस्तुओं से ही राज्य की शोभा है, अतः आप वहल कुमार से उन्हें ले लीजिये। कोणिक के मांगने पर वहल कुमार ने वह वस्तुएं देने से इन्कार किया कि "यह हार-हाथी पिता जी मुझे दे गये हैं, आप को कैसे दे दूं और यदि आप लेना ही चाहते हैं तो मुझे आधा राज्य बांट दीजिये"। किन्तु कोणिक इस पर राजी न हुआ और हार-हाथी लेने की प्रबल इच्छा प्रकट की। वहल कुमार ने जब देखा कि मेरे भाई के विचार अच्छे नहीं हैं, बहुत सम्भव है कि वह मुझ से बल पूर्वक आक्रमण कर छीन ले, तो वह अपने नाना राजा चेटक के यहां चला गया यह सम्वाद पाते ही कोणिक ने दूत द्वारा राजा चेटक के पास यह समाचार भेजा कि "दादाजी आप वहल कुमार को यहां भेज दें अथवा हार-हाथी मुझे दिला दें, क्योंकि इस हार-हाथी से राज्य की शोभा है"। राजा ने इसके उत्तर में यह कहला भेजा कि "हमारी दृष्टि में तुम दोनों भाई एक समान हो—दोनों ही पर हमारा प्रेम बराबर है, किन्तु ऐसा अन्याय-कार्य सदैव अनिष्टकर होता है, न्याय की अवहेलना करना अच्छा नहीं. यदि तुम उससे हार-हाथी चाहते हो तो आधा राज्य बांट देने में क्यों आनाकानी करते हो। बिना राज्याधिकार पाये वह पिता-प्रदत्त हार-हाथी तुम्हें कैसे दे दे?" यह सुनते ही कोणिक आग-बबूला हो गया. हृदय में क्रोध की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी और तत्काल एक दूत के द्वारा यह कहला भेजा कि "अरे दुष्ट चेटक, घर में फूट पैदा करानेवाला, पारस्परिक द्रोह बढ़ानेवाला, नराधम नीच, या तो वहल कुमार को अपने यहां से निकाल दे नहीं तो मेरे साथ संग्राम कर।" कोणिक की इस युद्ध-घोषणा को राजा ने यह विचार कर स्वीकार किया कि शरणागत की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है। राजा चेटक ने अपने सहयोगियों से भी इस विषय में परामर्श किया किन्तु सभी ने यही राय दी कि युद्ध के

(ध्यान मग्न) बैठे हुए महाशतक को—मदिरा-मत्त पर सवार

एक दिन रात्रि के समय रेवती ने विचार किया कि इन बारह सौतों के रहते हुए मुझे अपने स्वामी के साथ विषय-भोग करने का अधिक अवसर नहीं मिलता यदि किसी भाँति इन्हें मार डालूँ तो अकेले मौज उड़ाऊँ। एक समय अवसर पाकर उसने अपनी छः सौतों को शस्त्र द्वारा और छः को विष देकर मार डाला। इन सबों के मरणोपरान्त सारी सम्पत्ति की अधिकारिणी हुई और महाशतक श्रावक के साथ औदार्य प्रधान मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोग, काम क्रीड़ा, करती हुई आनन्द से दिन व्यतीत करने लगी। रेवती को मांस-मदिरा खाने-पीने का व्यसन पड़ गया था, वह मांस खाने की इस प्रकार आदी हो गयी थी, कि नगरी के राजा श्रेणिक के जीव हिंसा (पंचेन्द्रिय जीव का वध) न करने की मनादी पिटवा देने पर भी, गुप्त रूप से पिता के घर से लेकर आये हुए सेवक द्वारा मदिरा-मांस मंगा कर खाती ही रही। महाशतक श्रावक ने अपने धर्म-कर्म का यथोचित प्रतिपादन करते हुए इस से चौदह वर्ष व्यतीत किये। जब पन्द्रहवाँ वर्ष लगा तो वह गृहस्थी का भार अपने पुत्र को सौंप, पौषधशाला में दर्भ के आसन पर आसीन होकर एकाग्र चित्त से धर्म-ध्यान करने लगे। एक दिन रेवती शराब कर मदमस्त हो, सिर के बाल बिखेरे, बदन के वस्त्र नीचे गिराती, विकराल रूप धारण किये, पौषधशाला में महाशतक श्रावक के समीप आयी और काम-उत्पादक हाव-भाव दिखाती, उन्मत्त की भाँति अपने शब्दों से यों कहने लगी:—हे धर्मध्यानरत महाशतक! धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष के इच्छुक यदि आप सब सुख चाहते हैं तो इस धन, दल और घर में इतना व्यर्थ परिश्रम कर काया को कष्ट क्यों देते हैं? परिश्रम ही से सुख चाहते हैं तो मुझ प्रिया की प्रीति सम्पादन में परिश्रम कीजिये। प्रिया के साथ भोग-विलास किये धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष का लाभ प्राप्त न कर सकोगे। इन कामोत्पादक वाक्यों की कर्ण-कटु मारा को सुन कर भी महाशतक श्रावक

थी इसलिये रिनी बहू ने देवदत्त को एक बार ससुर को झूठा ठह-

राऊं। वह घर में आकर अपने पति के पलङ्ग पर सुख से सो गयी। और थोड़ी देर बाद उसे जगा कर कहने लगी कि "आज मैंने एक बड़ी विचित्र बात देखी, आपके पिताजी अभी यहां (शयनागार में) आये थे और मेरे पैर का आभूषण उतार ले गये हैं, मैं लज्जा-वश उनसे कुछ नहीं कह सकी। मेरा अनुमान है कि वह मेरे ऊपर कोई झूठा अभियोग लगायेंगे। मैं नहीं जानती कि वह मुझ से क्यों इतना खार-खाते हैं! वह तो अवश्य ही मेरे ऊपर झूठा दोषारोपण करेंगे, किन्तु सावधान आप उनके बहकाने में न आइयेगा"। प्रातःकाल होते ही ससुर ने अपने पुत्र से उसकी स्त्री की करतूत कही और नूपुर दिखलाया। पुत्र का कान तो पहले ही से फूंक दिया गया था—नूपुर दिखलाने ने सूखी घास रूपी शरीर में क्रोधा-ग्निरूप एक सी अग्नी फैला ही दी थी, उसने कहा पिताजी "आप तो सठिया गये हैं, आपकी बुद्धि मारी गयी है, अक्ल पर पत्थर पड़ गये हैं। बतलाइये, आप इक नाहक ही यह सब बखेड़ा क्यों रचते हैं, मेरी पतिव्रता स्त्री को झूठा कलङ्क क्यों लगाते हैं! आप ही कहिये कि जहां पर पुत्र अपनी स्त्री के साथ शयन करता हो, वहां पर आपको जाना चाहिये! जब आप उसके पैर का आभूषण निकाल रहे थे वह जागती थी, बेचारी सुशीला लज्जा के मारे आप से कुछ न बोली। वह तो आप के इस कार्य्य से लज्जित हो गयी किन्तु आपको शर्म न आयी। पिताजी! आप को इस बात का हाल तो उसने तुरन्त ही कहा था। मैं आप से प्यार के साथ कहता हूं कि मेरी स्त्री सदाचारिणी, पतिव्रता और निष्कलङ्क है। आप निरर्थक ही उसपर झूठा दोषारोपण करते हैं। पुत्र की ऐसी बातें सुन कर देवदत्त चकित हो गया और अपना सा मुंह लेकर रह गया। अब बहू ने भी ससुर पर उलटा वार बोलना आरम्भ किया, वह कहने लगी कि ससुर जी इस बात से मेरा बड़ा अपमान हुआ है, मेरे मुख पर कलङ्क की कालिमा लग गयी

ऐसी निन्दित नारियां बुध जनों को त्यागनी सर्वदा,

भर्ता के थल पै पडी मटकियों के तुल्य, दु:खदा ॥

स्त्रियां लालच से कभी खिलखिला उठती हैं, कभी फूट-फूट कर रोने लगती हैं, दूसरे को अपना विश्वास करा देती हैं परन्तु स्वयम् किसी का विश्वास नहीं करतीं। इस लिये बुद्धिमानों को श्मशान भूमि में रखी हुई हंडियों के समान स्त्रियों को त्याग देना चाहिये। सुदर्शन सेठ एक मास में चार पोसह करते और रात को श्मशान में जाकर सोते थे। धर्म-कर्म में तल्लीन सेठ सपत्नीक सुपात्र दानादिक शुभ कार्यों को करते हुए सुख के साथ दिन व्यतीत करने लगे।

तीसरा अध्याय

अभयाका कुविचार और धायकी शिक्षा।

वाटिका विहरण।

धात्री वाहन राजा की अभया पटरानी, बड़ी रूपवती, चन्द्रवदनी, मृगनयनी और लावण्यता में सुराङ्गनाओं से कुछ कम न थी। वह संसार की विषय-वासनाओं में ही वास्तविक सुख समझ, आनन्द से दिन बिताती थी। चम्पा नगरी के ईशान कोन में एक सुन्दर रमणीय उपवन था, यों तो वह सदैव ही हरा-भरा तथा फूला-फला रहता था, किन्तु वसन्त ऋतु में उसके चित्ताकर्षक गुण और भी बढ़ जाते थे। उस परम रम्य वाटिका में नगर के स्त्री-पुरुष सभी आमोद-प्रमोद कर नेत्रों का सुख उप-

[illegible]
बीकानेर (राजपूताना)

कर रखना मैं उचित नहीं समझती। यद्यपि बात बड़ी लज्जा पूर्ण है तथापि तुम से कहे बिना काम नहीं चलता। धाय! मेरा विश्वास है कि कार्य को तुम से गोपन रखना ही उसकी सफलता को उपेक्षा की दृष्टि से देखना है। अस्तु! तुम इसे ध्यान पूर्वक सुनो और मेरी अभिलाषा को पूर्ण करो। मैं राजा के साथ उपवन में वसन्त ऋतु देखने के लिये गयी थी, वहां पर चम्पा नगर के सभी आबाल-वृद्ध-वनिता बड़ी सज-धज के साथ पधारे थे। बड़े २ सेठ-साहूकार सिपाही-सामन्त और वीर पुरुषों का जमघट था, किन्तु अपनी स्त्री मनोरमा तथा पुत्रों के सहित आये हुए सेठ सुदर्शन की समता कोई नहीं कर सका। चन्द्रमा के उदय होने पर नक्षत्रों की जो दशा हो जाती है, ठीक वही दशा सुदर्शन सेठ के उपस्थित समाज में अन्य श्रेष्ठ पुरुषों की थी। उसका दिव्य शरीर, बड़े बड़े नेत्र, दीर्घबाहु, विशाल वक्षस्थल, सूर्य का सा प्रकाश, चन्द्रमा की सी शीतलता और समुद्र की सी गम्भीरता ने मेरे हृदय को बलात् अपने वश में कर लिया। हे माता! उस सुकुमार लावण्यमय रूप में न जाने कौन सी जादू भरी थी जिसने बरबस मेरे मन को खींच लिया। उस दिन से आगे बड़े २ राज-पाट फीके लगते हैं। मेरा मन उसमें लग गया है। मैं रात-दिन उससे मिलने का उपाय सोचा करती हूं। जब से मैंने उन्हें देखा मेरी भूख-प्यास हर गयी, किसी काम में जी नहीं लगता, न कुछ अच्छा ही लगता और न कुछ सोहाता ही है। किसी की बात अच्छी नहीं लगती, दिन उदास

रहता है। मैं उसपर इस प्रकार मोहित हो गयी हूं कि जब तक उससे मिलने का सुअवसर प्राप्त नहीं होता तब तक मैं दिन प्रति दिन मन क्षीण होती जा रही हूं। मैंने कपिला ब्राह्मणी से हाथ मल कर कहा है कि मैं सेठ के संग रमण कर उन्हें अपने वश में करूंगी। यदि मैं ऐसा न कर सकी तो मेरी जान मिट्टी में मिल जायगी। इसलिए तू मेरी मनोकामना की पूर्ति करने में सहायक हो। मैंने तुझसे [illegible] कर अपनी पक्की सखी मानकर तेरे सामने बात की है, अब तू मुझे सुदर्शन सेठ से शीघ्र मिला। मेरा इतना उपकार कर। मेरी बात का एक सार यह है कि यदि तू सच्ची मेरी हितैषिणी है, मुझे दिल से चाहती है और आन से मानती है तो किसी न किसी भांति जल्दी सुदर्शन सेठ को मेरे पास लिवा ला'।

पंडिता धाय की सुशिक्षा।

रानी के [illegible] [illegible] पंडिता धाय [illegible] [illegible] चेतना हुई और वह फिर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है! तू [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible]

आयी। प्रथम तो सेठकी सुन्दरता देख उसकी टक-टकी बन्ध गयी, मोह में मुग्ध होकर कुछ देर के लिए चित्र की भांति ज्यों की त्यों निर्निमेष खड़ी रही, मानो—"देखि लाग मधु कुटिल-किराती, जिमि गंय तकै लेउं केहि भांती"—सेठ को प्रेम-पाश में फांसने की क्रिया सोचने लगी। तदुपरान्त रानी मधुर स्वरों से नम्रता पूर्वक इस प्रकार बोलीः—"प्यारे! मैं अभया रानी हूं, आप से मेरा मन लग गया है। एतदर्थ मेरी धाय आपको यहां ले आयी है। कृपया मुझ काम-पिपासिनी की मनोभिलाषा पूर्ण कर, मेरा मानव जीवन सफल कीजिये। आप नेत्र खोलिये और देखिये कि जिस सुख प्राप्ति की इच्छा से आप यह कठिन तपस्या कर रहे हैं वह सुख आप को यहीं प्राप्त हुआ है,—पूर्व जन्म को याद कौन देख आया है, जो कुछ है सब यहीं हैं। अतएव मेरी प्रार्थना है कि लहलहाती हुई काम-वाटिका में विहार करते हुए जवानी के जोश में भरी हुई निम्नू-नारंगियों का आनन्द लूटिये। देखियेः—

कोमलता कजते गुलाबते सुगन्ध लै कै,
चन्दते प्रकाश कियो उदित उजेरो है।
रूप रति आननते चातुरी सुजाननते,
नीर लै निवाननतें कौतुक निवेरो है।
रानी कहत लै मसाल्यो विधि कारीगर,
रचना निहारी जन होत चित चेरो है।

है। भला इस परिवर्तनशील मोहनीय कर्म के चक्कर में पड़ कर— क्षणिक उपभोग सुख के लिये— मैं अपने शुभ मूल जिन धर्म के सिद्धान्तों को कैसे छोड़ सकता हूं। फिर भी इस भोग विलास की मृगतृष्णा से क्या लाभ जिस में कि:—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥

अर्थात्—विषय भोगने से विषय की कभी भी शान्ति नहीं होती, किन्तु अग्नि में घृत डालने से जिस प्रकार अग्नि की अभिवृद्धि होती है, उसी प्रकार काम की भी वृद्धि होती है। इत्यादि बातें विचार कर उन्होंने अपने मन को दृढ़ कर लिया और [illegible] वाणी को मानते [illegible] ब्रह्मचर्य के गुणों का चिन्तवन करने लगे। ब्रह्मचर्य एक ऐसा बड़ा गुण है कि इसका सेवन करने मात्र से दूसरे सब गुण स्वयमेव ही आकर मिल जाते हैं। ब्रह्मचारी पुरुष के लिये कोई भी काम, कोई भी सिद्धि, कठिनता से भी प्राप्त दुष्कर नहीं है। वह बड़े से कठिन से कठिन कार्यों को भी पूरा कर सकता है। शास्त्र में लिखा है

[illegible]

[illegible]

अर्थात्—ब्रह्मचर्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

गौरव से भरे हुये शान्त वचनों ने मनोरमा के मन को शान्ति प्रदान की। फिर मनोरमा ने कहा कि हे प्राणनाथ! आप कर्म-क्षय की तपश्चर्या करने जा रहे हैं अतः किसी प्रकार की चिन्ता न करना, केवली सब भाव जानते हैं।" देखो पूर्व संचित कर्मों के प्रभाव से व्याकुल होकर कहीं अनिष्ट कल्पनाओं को हृदय में स्थान न देना और जिनेश्वर भगवान् के सच्चे धर्म पर डटे रहना इत्यादि सत्परामर्श द्वारा अर्द्धाङ्गिनी मनोरमा ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया।

पांचवां अध्याय

मनोरमा का अभिग्रह और शूली का सिंहासन।

अभया रानीका प्रसन्न होना।

मनोरमा ने महल में आकर ध्यानावस्थित हो यह अभिग्रह धारण किया कि जब तक सेठ सकुशल गृह आकर मेरा ध्यान पूरा न करावेंगे तब तक आवज्जीवन आहार-पानी का त्याग है। इधर मनोरमा ने ऐसा दुष्कर अभिग्रह धारण किया उधर सेठ को लेकर राजदूत आगे बढ़े। यद्यपि सेठ के दुःख से प्रजा दुःखी थी, तथापि दुःखोन्मूलन में असमर्थ रही। अभया रानी रंगमहल के ऊपर चढ़ी हुई सेठ की बुरी दशा पर हर्षित हो रही है, मन में सोचती है कि हमारी आज्ञा की अवहेलना करने का ही फल है, जो आज इतना प्रतिष्ठित सेठ होकर भी साधारण नौकरों द्वारा प्रताड़ित हो रहा है। इसमें सन्देह नहीं की यह

हार की छटा निराली थी। सिंहासन का शिखर झिलमिल नवकांचन का होकर, मन हर मन को मोहित कर रहा था। ऐसे देव-निर्मित रत्न-जटित सिंहासन पर आसीन होते ही, देवताओं ने सेठ सुदर्शन को कान्तिमय बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित किया और शूली देने के अभिप्राय से निकटवर्त्ति सेवकों को मार भगाया। राजदूतों ने उत्पीड़ित हो, राजा के समीप आ सेठ की समस्त बातें ज्यों की त्यों कह सुनायी।

राज सेना का धावा।

यह समाचार पा कर राजा का क्रोध और भी बढ़ गया, उन्हों ने बिना उसका भेद भाव जाने ही—क्रोध के वशीभूत हो—सेवकों को आज्ञा दी कि शीघ्र चतुरंगिनी सेना तय्यार करो। राजा तत्काल ही गजारोही हो, चतुरंगिनी सेना साथ ले, बड़े २ शूर सामन्तों को आगे कर कूच का डंका बजा कर चले। महा घनघोर शब्द करती हुई सेना चल पड़ी और बन्दीजनों ने जयजय-कार के तार बान्ध दिये। सेना के विकट वीरों का सिंहनाद और जयजयकार मिश्रित घोर रव ने चम्पानगर निवासी नर-नारियों के हृदय में एक नवीन कौतूहल मचा दिया। सुकुमारियां झरोखों से झांकने लगीं; कायरों का कलेजा कांपने लगा और बालकों के म्लान वदन कुम्हला गये। उस समय सभी के चित्त चिन्तित हो उठे कि हाय! यह कैसा उपद्रव होने लगा।

नगर के बाहर जा, दूर से ही राजा ने देवताओं की सेना

"अरे मूढ़ ! धात्रीवाहन राजा, निर्लज्ज, कामी अनापत्या का जना, पापी, अकालही काल के गाल में जाने वाला, क्या तेरी हिये-कपाट की फूट गयीं ! तुझे सूझता नहीं है ! तू ने शील-व्रत धारक, महा गुणवान, ऐश्वर्यवान, सेठ सुदर्शन को शूली देने की तय्यारी की है और ऐसे सत्पुरुष को कामलोलुप समझ रखा है। तू अभी सेठ के सद्गुणों को देख, नहीं तो अपनी खैर न समझ। देख राजाः—

> नश्रुत्वा पराधेन परेषां दण्डमाचरेत् ।
>
> आत्मनावगतं कृत्वा बध्नीयात्पूजयेद वा ॥

अर्थात्—किसी के बहकाने से दूसरे को दण्ड न देना चाहिये। मारने और सम्मान करने के पूर्व अपने आप भली-भांति उसकी जानकारी कर लेनी चाहिये। तू ने अपनी स्त्री की बात मान कर सेठ को व्यभिचारी ठहराया और शूली का हुक्म दिया। न्यायी को अन्यायी और अन्यायी को न्यायी समझा। 'उल्टा चोर कोतवाल को डांटे' वाली कहावत चरितार्थ कर अपनी दुष्ट भार्या के अवगुणों पर ध्यान न दे, सेठ को ही मुल्ज़िम बनाया। इसके पश्चात् धाय जैसे सेठ को महल में लायी और रानी ने यातना पहुंचायी, देवताओं ने उनकी सारी करतूत राजा से कह सुनायी। रानी की सारी राम कहानी सुन, राजा का जी फट गया और दुःखित हो विचार करने लगे कि देखो, रानी ने मुझ से कहा था कि मैंने बड़ी कठिनाई के साथ सेठ से अपन

सेठ का गुणगान करते हुए देवताओं ने राजा की मूर्छित सेना को सचेत कर दिया और ब्रह्मचर्य के महत्त्व की प्रशंसा की। सुदर्शन सेठ की महिमा सुन, नगर निवासी आह्लादित हो उठे और उनके हर्ष का वारापार न रहा। तदनन्तर देव-प्रदत्त रत्नाभरणों से सेठ का अंग-प्रत्यंग प्रच्छन्न होगया। अमृत फेन के समान उनके उज्ज्वल दुकूलों की छटा निराली छिटक रही थी। दोनों भुजाओं में धारण किये हुए बाजूबन्दों से मालूम होता था कि मानो चञ्चला लक्ष्मी को बांध रखा है। देवताओं ने बड़ी धूम-धाम के साथ सेठ का महोत्सव किया और अनेकानेक भांति से यश गान के पश्चात् वह जिस मार्ग से आये थे उसी मार्ग से चले गये।

राजा द्वारा सेठ का महोत्सव।

देवताओं के चले जाने के पश्चात्, राजा ने सेठ के महोत्सव करने की मन में ठानी और सेवकों को बुला कर आज्ञा दी कि तुम लोग अति शीघ्र चम्पानगरी को सजाओ, गगन-स्पर्शी प्रासादों में ध्वजा-पताका उड़ाओ, हर्ष की दुन्दुभी बजाओ और सारे नगर में उच्चस्वर से महोत्सव का मूल कारण कह कर प्रजा को प्रसन्न करो। सेठ की सुभार्य्या मनोरमा से इसकी बधाई दो और चतुरंगिनी सेना तय्यार कर, पट हस्ती को सजा कर यहां लावो"। सेवकों ने राजाज्ञा का अविलम्ब पालन कर राजा को जनाया। राजा ने सेठ से विनम्र हो प्रार्थना की "आप का महोत्सव करने के लिए मेरा मन लालायित हो रहा है। मैंने

[illegible]

[illegible]

[illegible]

के बैल की भांति जुता रहूंगा। अतएव श्रीजिनेश्वर भगवान् के बताये हुए धर्म में अनुरक्त हो कर्मों के बन्धन को क्रमशः शिथिल करूं, क्योंकि इस कर्मपाश को काट कर मुक्त होना ही जीव का एक मात्र कल्याणकर कर्त्तव्य है। ऐसा मानव शरीर पाकर जिसने सच्चे धर्म, देव, गुरु को पहिचान कर, उसमें श्रद्धा न की उसने अपना जीवन व्यर्थ ही खोया। अतः अब मैं गृह त्यागी बन, पंच महाव्रत को पाल, बारह भेदों से तपस्या करते हुए इस रहस्यमय जगत के जालों से निकल कर, संयम के उत्तुङ्ग पर्वत पर चढ़ चलूं। इस प्रकार शिव-पथ के आनन्द का अनुभव करते हुए, सुदर्शन सेठ के हृदयोद्यान में वैराग्य का पुष्प-प्रस्फुटित हो गया और उन्होंने मन में ठान लिया कि अब जब साधु मुनिराज यहां पधारेंगे, संसार को छोड़ कर संयम ग्रहण करूंगा। उसका धर्म पर ऐसा दृढ़ प्रेम वैराग्य पर अटल अनुराग—शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति बढ़ता ही गया।

साधु-दर्शन।

कुछ कालोपरान्त चार ज्ञान के धनी साधु मुनिराज विचरते हुए, कतिपय साधुओं के संग चम्पानगर में पधारे। वन-रक्षक ने सेठ सुदर्शन को यह सुसम्वाद आकर सुनाया और वे बड़े प्रसन्न हुए। सेठ प्रफुल्ल वदन हो, मन में सोचने लगे कि, आज मेरा बड़ा सौभाग्य है, अब शीघ्र चल कर साधु-दर्शन का लाभ उठाऊं और अपना मनोरथ सिद्ध कर जीवन को सफल बनाऊं। इस प्रकार

[illegible] [illegible] तथा विवाह के [illegible] [illegible] मुनिराज के [illegible] ।

[illegible] मुनिराज के [illegible] अपार [illegible] [illegible] में दिन पर दिन [illegible] करने लगे । ये पुरुष मुनि-राज ने दिन [illegible] [illegible] श्रावकों को इस प्रकार धर्मोपदेश देना आरम्भ किया है [illegible]

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

अर्थात्—धर्म उत्कृष्ट मंगल का रूप है। इसके अहिंसा, संयम और तप इत्यादि अनेक भेद हैं। देवता भी इसे नमस्कार करते हैं। अतः धर्म की आराधना प्रत्येक प्राणी को करनी चाहिये।

देखो जीवकी चार गति इस प्रकार होती है—जो प्राणी पञ्चेन्द्रियजीवोंका हनन कर, मद्य मांस का भक्षण करते हुए आमोद-प्रमोद करता है, वह जीवकी पहली गति नरक में जाता है। जो प्राणी हिंसक, अन्यायकारी, व्यभिचारी, और भूठी बात लिखता तथा भूठा दोषारोपण करता है, वह दूसरी तिर्यंच गति में जाता है। जो प्राणी धर्म के कारण हिंसा कर प्रसन्न होता है, दूसरों पर भूठा कलङ्क लगाता तथा दम्भी, कपटी, और पाखण्डी होता है, वह नरक निगोद में जाता है। जो प्राणी विनीत, नम्र, सज्जन, अहंकार रहित, सत्यवादी और करुणा पूर्ण होता है, वह तीसरी गति मनुष्य योनि में जन्म लेता है। मनुष्य जन्म पाकर

अहर्निशि प्रयत्न करते रहना चाहिये, क्योंकि गया हुआ समय फिर हाथ नहीं आता। इस प्रकार उनकी धर्म-पीयूष-धारा से पापी-तापियों के मरुमय-हृदय विशुद्धतया हरेभरे हो गये और उन्होंने धर्म के तत्त्व को पहिचाना।

सुदर्शन का पूर्व भव।

तदनन्तर सेठ सुदर्शन ने विनम्र भाव से करजोरि प्रार्थना की—"स्वामिन्! मैं पिछले भव में कौन था, अनुग्रह पूर्वक बतलाइये"। साधु मुनिराज बोले, "सुदर्शन सेठ यदि तेरी ऐसी इच्छा है तो मैं तेरे पिछले भव की बात बताता हूं, उसे ध्यान पूर्वक सुन"।

"विन्ध्याचल पर्वत पर एक दुष्ट भील रहता था. संयोगवश वह धर्म-ध्यान करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ और गोकुल ग्राम में—गूजरों के महल्ले में—जाकर कुत्ता हुआ। गूजर के संग घूमते घूमते एक दिन उसे साधु-दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। साधु को देख कर ध्यान का शुद्ध परिणाम आया और वह आयु पूरी कर, उसी नगर निवासी एक गूजर के गृह में जन्म ग्रहण किया। यह तुम्हारे दूसरे भव का वृत्तान्त है। गूजर (तुम्हारे पिता) के घर में गायें, भैंसें बहुत थीं। वह नित्य गायों को चराने के लिए हरे-भरे जंगलों में जाया करता था। एक दिन तुम गायों को चराने के लिये गये। संध्या समय जब तुम जंगल से घर आ रहे थे, एक निर्जन

वचनों को न सम्भाल सकने के कारण मूर्च्छित हो धराशायी हो गयी। कुटुम्ब-परिवार वाले भी यह समाचार पाकर शोक-सागर में निमग्न हो गये; वंश-वेलि के आधारस्तम्भ सेठ के उक्त वियोग वाक्य ने उन्हें शुष्क बना दिया और सब के सब व्याकुल हो सोचने लगे कि 'हाय! सुख में यह दुःख कहां से आया, इस मनोरथ के फलते हुए वृक्ष पर वज्राघात कैसे हुआ! कुछ देर बाद मनोरमा को कुछ ज्ञान हुआ और उसने सोचा कि अब मैं चकोरी, उस चन्द्रानन के देखे बिना कैसे जीऊंगी! बस इतने ही में फिर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। उस समय दुर्निवार और दुर्गम मोह के प्रलयकारी वेग ने मनोरमा के अविचल चित्त को भी चंचल बना दिया। सुदर्शन सेठ उसे विक्षिप्त देख, मोह जाल में पड़ी हुई जान, इस प्रकार उपदेश देने लगे:—

"देखो इस जीवन धन का काल-चोर सदैव सिर पर खड़ा है, न जाने कब लूट ले जाय। परन्तु जाते हुए जीव के मार्ग में कंटक होना सच्चे कुटुम्बियों और हितैषियों का कार्य नहीं है। सांसारिक कार्यों में लिप्त रह कर वास्तविक आनन्द का अभिलाषी बालू को पेर कर तेल निकालना चाहता है। तेरा मेरा और मेरा तेरा यह सब कर्मों का ही मायाजाल है। इन्हीं के प्रपंच में पड़ कर यह पंचेन्द्रियां भी जीव को रंक बना देती हैं। जैसा कि कहा है:-

पर पुष्पों के पर्यंक पर लेट हो गयी। काम के मद से मदमाती गणिका पहले तो अपने दहिने कर पर कपोल रख, तिरछी दृष्टि करके कनखियों से देखने लगी, फिर कभी पाणि-पल्लव नचाती, कभी सीने पर हाथ रख सीत्कार करती और कभी आँखों का अर्द्धांश मीच स्खलित वचन बोलती थी। किन्तु आनन्द मय नन्दन के सरोवर में सराबोर होने वाले साधु सुदर्शन अपने स्वल्प जीवन काल में ही (शील-व्रत के विश्वविद्यालय में परीक्षोत्तीर्ण होने के पूर्व ही) अध्ययन कर चुके थे कि:—

मन के वश में फँसि कूकर ज्यों, रस के हित अस्थि चबावत है।
निज शोणित स्वाद मोद भरो, पर नेकु विवेक न लावत है।
नर हू वनिता तन सेवन तें, तनिकौ न कबू सुख पावत है।
निज देह परिश्रम के मिस ते, सुख की सठ भावना भावत है॥

अतएव इस विष्ठा-मूत्र और दुर्गन्ध की गुफा, धर्म-ध्यान में बाधा पहुँचानेवाली, लोगों की विडम्बना कर, नरक निगोद में ले जाने वाली कामिनी से सदैव सावधान रहना चाहिये। यह दुर्लभ मानव जन्म पाकर आत्म-हित मुक्ति के मार्ग का अवलम्बन करना ही प्रधान कर्त्तव्य है। इत्यादि यों सोच के ध्यान मग्न हो पर्वत के समान निश्चल हो रहे। लोहे का गोला आँच लगते ही गल जाता है; किन्तु माटी के गोले को जितना ही तपाया जाय उतना ही वह पक्का और मजबूत होता जाता है। ठीक यही दशा साधु सुदर्शन की हुई, ज्यों २ उन्हें कष्ट मिलने लगे त्यों २ वे

मकान में चले गये और सादरी दिया, सादर पूर्वक, साद
स्पर्श करने लगे।